

बचपन और पेड़ों से दोस्ती

– अनिल कार्की

मैं ने एक बार अपने भतीजे से कहा कि खेत से मेथी में लौटा, बिना मेथी के पते लिये। मैंने पूछा क्या हुआ तो बोला, “चाचा मुझे पता ही नहीं चलता कि मेथी का पता कैसा होता है?” मुझे बड़ा अजीब सा लगा, सोचा कि कैसे अब बच्चे अपने आस-पास पेड़-पैदौं से परिचित हों उनसे जुड़ सकें। तब मुझे अपने बचपन के दिन अचानक याद आये। कितने ही घास-पात के पेड़ और फलों के पेड़ याद थे और अभी भी हैं। कितने ही पेड़ों के बारे में हमने लोक गीतों और कहावतों में सुना बल्कि कई बार सुना ही नहीं उनके स्वभाव को भी जाना।

बहुत सरल से कुछ उदाहरण दे रहा हूँ। एक बहुत पुरानी कहावत है, ‘सान्न छूं पधान हो क्यों सौ जाग् टेड़’ (पेड़ों ने सानड़ या सानन नाम के सीधे पेड़ का नाम जैसे ही पेड़ों का मुखिया बनने को प्रस्तावित किया तो वह सानन का पेड़ सौ जगह से टेढ़ा-मेढ़ा हो गया)। यानि कि वह अदायें दिखाने लगा। सानड़ के पेड़ों की ठेकी का जिक्र लोकगीतों में खूब आता है। कहते हैं कि उसकी लकड़ी से बने बर्तन की दही के स्वाद का जवाब नहीं (मैंने एक बार खाया था)। वैसे पहाड़ में गेठी व र्वेल, हरड़ के पेड़ों के बर्तन बनाने के जिक्र सर्वाधिक मिलते हैं। बर्तनों के आदिम कारीगर कुमाऊं के पहाड़ के बनराजी अदिवासी माने जाते रहे। तथाकथित सर्वांगी द्वारा निचली माने जाने वाली जातियां भी यह काम करती रहीं। हालांकि अब यह कला भी धीरे-धीरे विलुप्त होने जा रही है।

यहां बता दूँ कि सबसे दमदार हुड़क (प्रमुख वाद्य) गैल नाम के पेड़ के गिण्डे से ही बनता है जिसकी प्यांग सबसे मोहक होती है। सबसे अच्छी बांसुरी या सीधी मुरुली का ‘स्वोर’ झुमरा नाम की एक रिंगाल की प्रजाति की बनती है। इसीलिये ‘झुमरा की नती’ का जिक्र लोकगीतों में खूब मिलता है। इसी झुमरे से ‘थ्यो’ (जानवरों को दवा पिलाने वाली नली) भी बनती थी। मेरी स्मृतियों में ऐसे ही

कुछ पेड़ हैं जिन्हें देखते हुए चट से मैं उनका नाम ले लेता हूँ। कई लोगों का मानना है कि हल्द्वानी का नाम हल्दु नाम के पेड़ों के बहुतायत होने पर हल्द्वानी रखा गया। इस स्मृति को हमारे लोकजीवन ने वर्षों से अपनी मौखिक परंपरा में सहेज कर रखा।

हल्द्वानी का हल्दे रुख बानर रुखारी

मन मेरो हंसिया छिपो करम दुःखारी।

(हल्द्वानी के हल्दु के पेड़ में बंदर घढ़ बैठा है, साथी मेरा मन तो खूब रंगीला है पर करम में दुःख लिखे गये हैं।)

एक दूसरे जुटजोड़ में बारिश में टपकते बांज के पेड़ की तुलना ‘रुडकी’ में प्रशिक्षणरत सिपाही से किया गया है।

धार का लटुवा बांज पानि लागो चुनाना,

रुडकी का रंगरोटी सिप्पा दुःख लाग्यो रुनान।

(पहाड़ के खूब पतेदार बांज के पेड़ बरखा पड़ने पर वैसे ही टपकते हैं जैसे कि दुःख लगने पर रुडकी का प्रशिक्षणरत सिपाही रोता है।)

बांज और फल्यांट, कटूंज (इस पर एक चांचरी है—‘सिलगड़ी का पाला चाला कटूंज की गैला’) यह पेड़ पहाड़ में कृषि औजारों में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख पेड़ हैं। इसके अलवा तुन और अंगु भी प्रमुख हैं। अंगु वही ऐतिहासिक पेड़ है जिसने दुनिया को पर्यावरण का अनोखा आन्दोलन ‘चिपको’ दिया। जिसकी अग्रणी भूमिका में पहाड़ की स्त्रियां ही थीं। इसी आन्दोलन की अगवा पुरुखिन गौरा देवी ने कहा था, “जंगल हमारा मायका है।” कई ऐसे पेड़ों के जिक्र भी लोक गीतों में हैं जिनके खत्म होने या बीमार होने के स्वभाव को भी बताया गया है। ‘सल्लो कूयो जाड़ा बर्टै, मालू कूयो मुण्डनी’ (चीड़ का पेड़ अपनी जड़ों से सड़ के खत्म होता है और मालू सर से।) चीड़ की तैलीय लकड़ी का छिनुक या छ्यूल अंधेरी रातों को रांके (मशाल) बनाने के काम आता था और मालू के पेड़ पर तो जाने कितने ही मोहक लोक

गीत हैं। एक प्रमुख गीत है— ‘पारी भीड़ा कि कोछे घस्यारी? मालू वे तू मालू नी काटा।’ जीजा साली के संवाद में जीजा कहता है, “पार पहाड़ी भीटे पर तू कौन घस्यारी है? सुन, मालू मत काट, मालू काटने का पाप लगता है।” ऐसे सैकड़ों गीत हम बचपन में ही सीख लेते थे। मालू के गहरे भूरे कोसे (फलियों) को हम चूल्हे में डाल के उन्हे जला के उनके भीतर के गूदे को खाते थे या फिर सूखी फलियों के एक कोने में छेद कर एक मजबूत धागे से बांध उसे यों सर के ऊपर तेजी से चक्राकार घुमाते कि वह वन भंवरे सी तेज आवाज करता। मालू बहुत कठोर चट्ठानों के आस—पास उगता है। अल्मोड़ा की प्रसिद्ध मिठाइ सिंगोड़ी इसी मालू के पत्ते में लपेटी जाती हैं। हम लोग खेत व जंगलों से लगातार भिलते रहते तो कई पेड़ों के नाम तो यों ही याद हो जाते। पहाड़ में तो कई जगहों के नाम उन पेड़ों के नाम पर ही लिए जाते हैं, जैसे जो वहां बहुतायत पाये जाते, ‘पीपलधार’ (पीपलवाला पहाड़)। ‘सत्याड़ी’ (वह जगह जहां चीड़ के पेड़ हों)। ‘बज्जारी’ (वह जगह जहां बाज़ के पेड़ हों)। ‘सुरई धार’ (वह पहाड़ जहां सुरई के पेड़ हों) काफली गैर (वह जहां काफल के पेड़ हों वैसे उत्तराखण्ड की एक जाति कफलिया भी काफलीगैर से ही है) जैसे सैकड़ों नाम अब भी प्रचलन में हैं जो किसी समय उस क्षेत्र में उन पेड़ों की बहुलता के आधार पर रखे गये होंगे।

वैसे मेरी स्मृतियों में इसके अलावा सोंलों (धास के लिये प्रयुक्त पत्तीदार) वाले पेड़ भी हैं जिनमें पहला पेड़ कठमोड़ा है। कठमोड़ से दो किस्म की दोस्ती थी, एक तो इसके पत्ते भैंस और बकरियों को बहुत ही पसन्द थीं और दूसरा यह कठफोड़वे का घर था जैसे हम ‘कठकटोर’ (बुड़पैकर) कहा करते थे। कठकटोर इसी के तने पर टकटक बाजा लगाया करता था। कठमोड़े के तने पर मुझे एक बार न्यौली (हिमालयन बारबेर) का धोंसला भी मिला था। ऐसा ही दूसरा पेड़ है वितर्यानी (पहाड़ी नीम की प्रजाति) जो तोतों की पसन्द का पेड़ होता है। उसके तने पर तोते धोंसला बनाया करते हैं। तोते के धोंसले इसी पेड़ की बदौलत हमने देखे। हम उसके धोंसले को ढूँने इसी पेड़ पर जाते थे। एक पेड़ था ‘दामड़ी’। भैंसों में होने वाली चकतेदार बीमारी ‘दामड़ी’ में इसकी फलियों के गूदे को दिया जाता था। उसकी फलियां विशालकाय चील के पंखों सी होती थी और उसके भीतर का गूदा भी कागज सा ऐसा पटा होता जैसे कि पर्स में करीने से नोट रखे गये हों। हम उसके बीज बिखेर देते और उसके विशालकाय फलियों के छिकल अपनी बाहों में बांध के



उड़ने का खेल करते। एक पेड़ था खिनवा जिसे हम अपनी भाषा में ‘ख्यन्या’ कहते थे। बन अंजीर की प्रजाति तिमुल, उमर, खसटिया, खिनवा, ये एक ही प्रजाति के पेड़ हैं पर स्वभाव अलग—अलग हैं। एक साधारण अन्तर है, तिमुल का पत्ता सबसे चौड़ा जिससे पूँडे (दाने) बनते हैं। तिमुल के तने पर जहां से टहनियां निकलती हैं वहां पे फल लगते हैं। पकने के बाद पीला रसीला होता है। तिमुल के बारे में कहावत है कि इसका फूल रात बारह बजे खिलता है जो इसका फूल देखता है वह भाग्यवान होता है। ‘उमर’ का पत्ता कुछ खुरदुरा होता है। उमर का दाना हल्का लाल रंग लिये हुए होता है। इसके पत्ते जानवर बहुत चाव से खाते हैं और दाने हम लोग। यह तिमुल से कम रसीला होता है पर इसकी महक का जवाब नहीं। इसका एक बड़ा औषधीय प्रयोग होता है, यदि पैर में ‘मोच’ आ जाय तो इसके तने से निकलते लसलसे चोभ को (तने को खरोचने पर निकलने वाला पदार्थ) ‘मोच’ वाली जगह पर लगा देते हैं जिससे कुछ ही दिनों में ‘मोच’ ठीक हो जाती है। पूर्व में इसका ‘चोभ’ दूटी हड्डियों को जोड़ने के लिये प्रयुक्त किया जाता था, ऐसा वर्णन मिलता है। अब भी गांव में कई लोग ऐसा करते हैं।

एक बार मेरा हाथ कलाई से फ्रैक्चर हो गया। मेरी बहनें मुझे पिशौरागढ़ के जिला अस्पताल ले गईं। मुझे याद है वहां जिस बेरहमही से हड्डी वाले ने मेरी कलाई खींची थी। फिर उस पर प्लास्टर बांधा गया था। उस प्लास्टर से ही मुझे घुटन सी होने लगी थी। बड़ी मुश्किल से चार दिन झोला और एक दिन अपनी आमा (नानी) से कहा,



"आमा मुझे खुजली लग रही।" आमा ने कहा, "कहीं जुवें तो नहीं पनप गये भीतर!" उनका यह कहना था कि खुजली और जोर-जोर से होने लगी। और कुछ ही पल मैं मैंने आमा से कहा, "आमा, शायद इसमें सच में जुवें पड़ गये।" आमा ने कहा, "काट दे प्लास्टर!" दराती फंसा के प्लास्टर काट डाला दर्द सह-सह के। कलाई में सूजन थी। ऊंचा नाम की एक जड़ी-बूटी विस के लगाई गयी। पिता और बहनें भुनभुनाई, "क्यों काटा? अब तेरा हाथ सदा के लिये टेढ़ा हो जायेगा।" मैं रोने लगा तो नानी ने कहा, "मैं तुझे ऐसी दवा बता के जाऊंगी तेरा हाथ और सुन्दर हो जायेगा। तू चिन्ता मत कर।" उस दिन आमा ने इस उमर के पेड़ से दोरस्ती कराई। जब तक हाथ ठीक नहीं हुआ मैं रोज शाम कुदाल ले के उमर के जड़ पे बैठ जाता और उसके सबसे निचले तने पर दो चार कुदाल की धाव लगा के उनसे रिसता घोम अपनी कलाई पर लेप देता था। फिर पट्ट से पट्टी बांध लेता। कुछ समय बाद मेरा हाथ बिल्कुल ठीक हो गया। मैं उमर के पेड़ से कहता, "तुम मेरा हाथ ठीक कर देना।" पेड़ ने मेरा हाथ ठीक कर दिया।

खसटिया का पेड़ भी तिमुल के करीब का ही है। इसका खसरा पता होता है। इसके पत्ते जानवर बड़े चाव से खाते हैं। जानवर गले का रोग (भेकुन या भेकत्या) हो जाये तो इसी पत्ते में नमक रख के जानकार गले के भीतर तक हाथ ले जाकर उसे एक तरह से रगड़ देते हैं जिससे जानवरों के गले के रोग ठीक हो जाते। फिर आया खिनवा का पेड़। मुझे खिनवा के फल बहुत पसंद हैं। कुछ खट्टे, कुछ मीठे। उनका स्वाद चरचरा होता था। खिनवा भी जानवरों का ही धास का पेड़ है। पर इसके फल इसकी जड़ के आस-पास जड़े होते हैं। पकने के बाद एकदम ताम्बई रंग लिये।

पहाड़ में मसाले और औषधीय पेड़ों और धार्मिक महत्व के बहुतेरे पेड़ों के साथ मेरी त्स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं, जिन पर अलग-अलग ढंग से कभी भविष्य में लिखूंगा। यहां धास और कीमती लकड़ियों के पेड़ों से जुड़ी याद ही साझा कर रहा हूं। पेड़ों से कैसा अद्भुत लगाव है, ऐसा ही एक किरसा है—थुनेर के पेड़ का। यह थुनेर का पेड़ वही पेड़ है जिस पर पहाड़ों में दरवाजे और छज्जे की काष्ठकला की जाती थी। थुनेर (टैक्सास बकाटा) देवदार का ही जैसा ही 'सौ साल खड़ा, सौ साल पड़ा, और सौ साल सड़ा' इतना मजबूत होता है। पर लम्बाई में देवदार से कम होता है। किसी जमाने में थुनेर काष्ठकला के शिल्पियों का पंसदीदा पेड़ हुआ करता था। वे अपने

मनमुताबिक इसमें अपनी कला को अंकित कर पाते थे। यह बहुत औषधीय पेड़ है। इसके छालों की चाय पी जाती थी। कहते हैं, यह लाईलाज रोगों को दूर करता है जिसमें कैंसर जैसे रोग भी शामिल हैं। इसकी छाल से रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है। अब यह पेड़ लुपत्रायः है क्योंकि इसके अंधाधुध विदोहन ने इसे नुकसान किया है। परन्तु किसी दौर में कहते हैं कि जब कोई अपना घर बनाता था तो उसके लिये लकड़ी का इन्तजाम करने के लिये थुनेर के पेड़ की तलाश में जंगल निकलता था। अगर पेड़ मिल जाता तो वह शाम को उसकी जड़ में दिया जला के आता और सुबह उसे काटने से पहले थुनेर से मांफी मांगी जाती थी। तब जाकर उसे काटा जाता और शिल्पी उस पर कला अंकित करता था। यह उस विराट हिमालय का जीवन था।

भीमल एक बहुउद्दीशीय पेड़ है। उससे रेशा, मसाले, पत्ते मिलते हैं। उस पर कभी फिर लिखूंगा। मैंने एक बार एक मार्मिक गीत सुना था जिसमें भीमल के पेड़ से एक पहाड़ी स्त्री अपने मन का सारा दुःख व्यक्त करते हुए, उससे निवेदन करती है, "हे भीमल (भिकू, भ्योल, भिमुवा) की डाली तू ही मेरा इंसाफ करना। मैं तुझ पर रस्सा डाल के फांसी पर झूल रही हूं।" इस गीत को सुनने के बाद मैं हफ्तों उदास रहा। मैंने इतना उदास मृत्यु का गीत कभी नहीं सुना था। कहते हैं हिमाल को स्त्रियों ने सम्भाला यह सच है क्योंकि स्त्रियों ने ही हिमाल को बोलना सिखाया। हिमाल के कण-कण में देवता बसते या नहीं यह मैं नहीं जानता, पर इतना जरूर है कि हिमाल के कण-कण से स्त्रियों की कथा जुड़ी हैं। कहीं वे पहाड़ों से झुक जाने का निवेदन करती मिलती हैं। कहीं नदियों से रास्ता देने का। कहीं पेड़ों, पंछियों को अपना दुःख सुनाती हैं। यह लोक गीत पहाड़ के उस पितृसत्तात्मक समाज का चेहरा उधाड़ के सामने रखते हैं जिसे कई बार महिमामण्डन किया गया है। भीमल की डाली से एक मार्मिक सवाद-

आज मैं कणि लैरो निसास
फांसी बणी गो मेरो सोरास
मिपुवे कि डाई करियै विचार
ज्योड़ी बांधनू आज त्वै पर
नी फाड़ी मैले व्याकि झागुली
नी तोडा मैले दातुली ज्योड़ी
कैल चलायो दान दहेज
कैले चलायो चेली बेवून।

(आज मुझे अपने पिता के घर की उदासी लगी है। मेरे लिये यह संसुराल तो फांसी बन गया है। और ओ! भीमल की डाल तू सोचना—विचारना रे। आज मैं तुझ पर रस्सी बांध रही हूँ। अभी तो मैंने शादी का झगुला भी नहीं फाड़ा। अभी तो मैंने घास काटते हुए दरातियां और रसियां नहीं ठोड़ी। और ओ! भीमल की डाली बता कि दान—दहेज किसने चलाया होगा? और किसने चलाया होगा लड़की की शादी का रिवाज?)

यह गीत बहुत लम्बा है। ऐसे दोस्त थे पेड़ हमारे पुराखिनों के और हमारे भी। किसी भी संवेदनशील मनुष्य की तरह जिनसे अपने हर दर्द बाटे जा सकें। इजा गाती है, “उभ हुनी उमर में जन काटे डाकुली।” मतलब कि पेड़ के बढ़ने की उम्र में उसके बीच की मूल डाली को न काटना। क्या इस भागमभाग समय में हम सोच पाते हैं कि सङ्क किनारे के उन पेड़ों के बारे जिसे एक दिन विकास की भैंट चढ़ना ही होता है, कभी नहीं। मुझे इस समय हिमाल के स्त्रियों पर बात करता यह गीत याद आ गया जिसमें एक स्त्री की तुलना झील किनारे के तुन के पेड़ संग की गई है। यह गीत महान नेपाली सारंगी वादक झलकमान गंधर्व का है। गीत बहुत लम्बा है। डाफ्या चड़ी (मोनाल पंछी) नाम के इस गीत का यह हिस्सा दे रहा हूँ।

“हिमाचुलि त नाक मा फुली

ठमठम ढुली

माया मा भुलि

लेखा क टुनि र

एक बार ज्यूनी।”

(भावानुवाद : तुम तो हिमाल के नाक की फूली हो। लटैक के साथ उसके आर—पार धूमती हो। तुम झील किनारे की तुन का पेड़ हो। एक ही बार जन्म लेती हो।) पेड़ों से दोस्ती के कुछ और अनुभव जो शेष हैं उन्हें भी साझा करेंगा। बस इतना कहना है कि किसी बूढ़े पेड़ के तने को बाह में भर कभी उससे बतियाना जरूर। यही मैंने अपने कक्षा सात में पढ़ने वाले भतीजे से भी कहा, बहुत तो नहीं उसकी अब कुछ पेड़ों से दोस्ती हो गई है। हां, वह मेथी का पत्ता पहचानने लगा है।

अंत में उम्मीद के साथ एक लोक कथा दे रहा हूँ उसे सुन पढ़ कर आप समझ पायेंगे कि हजारों सालों के अनुभव समेटे वर्तमान तक आये गांव अपनी प्रकृति से कैसे बतियाते हैं और यह क्रम कितना जरुरी है जीवन और प्रकृति को जानने के लिए—

“एक किसान अपनी कहानी अपने तक ही नहीं रख सकता वह कहानी सुनकर दिन—ब—दिन मोटा होता

जाता है। कहानी किसी से न कह पाने से जब उसका पेट मोटा और फटने को होता है तो वह विवश होकर अपनी कहानी अपनी पत्नी को सुना देता है। पत्नी को भी जब कोई सुनने वाला नहीं मिलता तो वह मोटी भी होती जाती है। मज़बूरी में वह एक गड्ढे को कहानी सुना देती है और फटने से बच जाती है। गड्ढा भर जाता है और उसमें एक पेड़ उग आता है। पेड़ की लकड़ी से बासुरी और लुकुड़ (ढोल बजाने की लगड़ी) बनती है और तने से बनता है ‘नाल’ जिसे सानकुरा नाम का कारीगर ढोल में बदल देता है और ढोल बज बज के फिर से वही कथा सब लोगों को सुनाता है।”

इस कहानी का एक और अलग संन्दर्भ है। यहां एक जेंडर दूसरे जेंडर को कहानी सुना रहा है इस तरह से फिर दूसरा जेंडर नेचर को। नेचर फिर से दोनों जेंडर को कहानी सुना रहा है। यह जो रिसाइकिलग है वह इस कथा के भीतर की दूसरी कथा है। यह कथा कुछ गहरा कह रही है। हम सब कितने तार्किंग मानवीय ढंग से प्रकृति से जुड़े हैं यह कहानी इसकी बानी है। एक दूसरे को सुनाना फिर नेचर को सुनाना नेचर का फिर से लोगों को सुना देना। नेचर से इन्सान में आ रहा है और फिर इन्सान से नेचर में जा रहा है यह पूरी प्रक्रिया है। आप सोचिए जिस समाज में रिसाइकिलग की यह प्रक्रिया नहीं होगी वहां पर क्या हो रहा है। जिस तरह से नेचर को इन हालिया सालों में खत्म कर कंग्रीट के जंगल खड़े किये हैं वहां पर रिसाइकिलग तो हो ही नहीं सकती। क्या वहां पर कोई यह कथा सोच सकता है? वहां वह कहानी खिड़की को सुनायेगा, कांच को सुना देगा, कुछ और हो जायेगा लेकिन पेड़ को नहीं सुना पायेगा। कहीं हमारे जीवन और शिक्षा से एक बड़ी एक बीज कट तो नहीं रही? नेचर और परिवेश का हमारे बीच से कट जाना हमें कहां ले जा रहा है? हमारे लिए धरती में एक इंसान और एक गढ़दा रह गया या मैटिरियल रह गया जिसके बीच में इन्सान फंस गया है। यह कथा जहां से पैदा हुई है उसके इर्द—गिर्द अगर पेड़ बचे रहेंगे तभी आप यह कथा सोच सकते हैं। मुझे पेड़ों से दोस्ती की यह समझ अपने परिवेश से मिली है, किसी किताब और स्कूल से नहीं। मैं कभी—कभी सोचता हूँ मनुष्यता की परिभाषा तब तक अधूरी है जब तक हम अपने आसपास की इन जरुरी चीजों के बजूद और सहअस्तित्व का सम्मान करना नहीं सीखते, तब तक हम इनसे दोस्ती नहीं कर सकते।

(लेखक अंजीम प्रेमजी फाऊंडेशन, अल्मोड़ा से जुड़े हैं)

